ओमशान्ति

संस्कार परिवर्तन :-

आज सभी लोग चाहाते है कि संसार में सुख और शान्ति हो, लोगों का अचरण श्रेष्ट तथा व्यवहार सात्विक एवं सदभावनायुक्त हो, परन्तू सभीकी यह ईच्छा पुर्ण नही हो पा रही हैं क्योंकि नर-नारी के संस्कारों में परिवर्तन नही आ रहा है। मनुष्य के संस्कार अथवा उसका अर्धचेतन मन ही उसके विचार और व्यवहार का जनक होता है। वही उसकी दृष्टी-वृती को तामसिक, राजसिक सत्विक बनाता है और उसके कर्मो को महानता या निकृष्टता कि श्रेणी में ले जाता है। मनुष्य के जैसे संस्कार होते है वैसा उसका व्यक्तित्व होता है, अत: संस्कारों को बदलना सुख-शान्ति की प्राप्ति के लिए अवश्यक है। जन-जन के संस्कारों को बदलने से संसार को बदला जा सकता है। जन-जन के संस्कार अत्यांत निर्मल हो तो युग का नाम सतयुग और संस्कार यदि मलिन एवं हीन हो तो युग का नाम कलयुग हुआ करता है। इसलिए संस्कारों को बदलना ही संस्कृती परिवर्तन या युग परिवर्तन है। हमारे कर्मोंकी पुनारावृति हमारे संकल्पों का निर्माण करती है और हमारे कर्म हमारी चेतना से ही संप्रेषित होते हैं। अत: संस्कारों को बदलने के लिए चेतना और ध्यान को बदलना जरुरी है। यदि हमारी चेतना देहभान से रंगी हुई हो तो हमारे कर्म हमारी स्थिति को दिनोंदिन निम्न रफ्तार के बनाते जाते हैं। इसी अनुरुप हमारे संस्कार भी पवित्र निर्विकारी और दिव्य होते हैं। हमारे संस्कार हमारे पुर्व कर्मों की सुषुप्त स्मृतियाँ है। उनके परिर्वतन के लिए अब उनका परिवर्तन करने वाली स्मृतिकी अवश्यकता है। इस स्मृतिको ही हम ईश्वरिय स्मृति या अपने लक्ष्य की स्मृति कहते हैं। ये स्मृतीयाँ ही हमारी दृष्टि, वृति, कृति को पवित्र बनाते हुए हमारी सुषुप्त स्मृतियों तक पहूँचकर उनका भी शुद्धिकरण कर देती है। यही नए संस्कारों की रचना की प्रक्रिया हैं। यूँ तो हर एक मनुष्य चाहाता है कि वह महान बने और सुख व शान्ति को प्राप्त करे परन्तू संस्कार बदलने के लिए जिस पुरुषार्थ की अवश्यक्ता है उसके लिए वह दृढ संकल्प नही कर पाता और टाल-मटोल करता रहता है। बहाने बनाता रहेता है इसके प्रकार वह अपनी शक्तियों को क्षीण करते हुए दिनों दिन अपने विकर्मों का बोझ और बढाते हूए दलदल में गहरा धंसता चला जाता है। इसपर भी यदि कोई उसे निकालने का सहयोग देना चाहे तो उसकी भी वह बात नही मानता और सहयोग नही लेता। यह सबसे बडी विडंबना है कि मनुष्य चाहाता कुछ और करता उसके विपरित है, इसलिए आज सबसे पहले इस बात कि आवश्यक्ता है की आलस्य पन, बहानेबाजी और मजबूरियें का अलाप-प्रलाप करना छोडकर मनुष्य पुरुषार्थ में तत्पर हो जाए और संस्कारों को बदलने के लिए दृढसंकल्प करते हुए पवित्रता, आनंद, शान्ति, एवं शक्ति देने वाले राजयोग की साधना में लग जाए निजी संस्कारों को बदलने से ही यह संसार बदलेगा।

आखरी सच :-मनुष्य सच्चाई से कितना भी बचने की कोशीश करे पर बच नही सकता। एक ना एक दीन सच्चाई सामने आ ही जाती हैं। जीवन भर हम शीरर को कितनी हिफाजत से रखते हैं, सजाते हैं, संवारते हैं, खिलाते-पिलाते हैं। छोटीसी तकलिफ में सरपर आसमान उठा लेते हैं। दुनिया में कितना भी नीडर और शक्तिशाली, बलशाली व्यक्ति हो मगर मरणा कोइ नही चाहाता कारण की मनुष्य का देह और देह के सम्मंदो में मोह हैं। सबसे ज्यादा मोह उसकी स्वंय की देहसे हैं। मगर मृत्यु जीवन का आखरी सच हैं जीसे कोई रोक नही सकता और इस कडुवे घुंट को सभी को निगलना ही पडता हैं, तो क्यों न जिवन रहते हुए भी

जीवन के इस कटु सत्य को हम पूरी तरह समझ ले व स्विकार कर लें और यदि हम इस आखरी सच्चाई को समज जायेंगे तो बहुत सारी बुराईयों से बच जायेंगे।

जीवन का अर्थ यह है की मनुष्य एक मुसाफिर की तरह दुनिया की यात्रापर आया है। यात्र के दौराण कभी कोई मुकाम पर यात्री स्थाइ घर नही बना सकता। क्योकि उसे मालूम होता की शीघ्र ही मूझे वापस जाना होगा। मगर इन्सान घर बनाने के अदी है, बच्चा दुनियामें जन्म लेता है बडा होता है रिश्ते जुटने लगते हैं शादी विवाह होता है और व्यक्ति घर बना लेता है। घर बसा लेता है और इस घर को ही अपना वास्तवीक घर समज लेता है। विडम्बना है कल तक जो आत्मा उडता पंछी थी आज पिंजडे में बंद हैं। पहले शरीर रुपी घर यह मीट्टी का घरोंदा। चार दिवार में जिंदगी कैद है। दीवार और घर को आदमी छोडना नही चाहाता। मनुष्य वस्तु और व्यक्तियों में बंध गया है। भीड में और भेडों के बिच में वह अपनी वास्तवीक पहेचान भूल गया है। यह की शरीर विनाशी है और आत्मा अविनाशी हैं। वह घरवाला नही बेघर है, मुसाफीर है, मुसाफीर घर नही बनाते हैं। उनका काम सिर्फ चलना है और मार्ग में पडने वाले स्थानों का अवलोकन करके वापस लौट जाना है। मनुष्य का जीवन दुर्लभ और अनमोल है उसके पास अनुठी शक्ति और बुद्धि हैं, ज्ञान और गूण है मगर इनका प्रयोग मात्र हड्डी मास के शरीर को चलाने के लिए नही करना हैं। मगर होता यही है अधीकांश लोग खाने-पीने, भोग-विलास आदि में जिवन की कीमती घडीयाँ निकाल देते हैं। और अंत के समय में बिना कुछ खास किए हूए और जीवन के रहस्य को जाने हूए वे शरीर छोड देते हैं। इसलिए जीवन के महत्व को समजते हूए इन्सान को श्रेष्ट कर्म करना हैं। ऐसे हमारे कर्म हो जो की दुनिया याद करे, ऐसे कर्म जो पुण्य के रुप में अपने साथ आत्मा ले जा सके। ऐसे कर्म जो मृत्यु के पश्चात नये जिवन के भाग्य का निमार्ण करे। इसलिए मृत्यु तो अंतिम सत्य है, उसे तो आना ही है फिर डरना कैसा, डरना तो चाहिए पापकर्मोंसे अपने दुर्गुणों से दुर्व्यासन और बुराइयों से अपने अज्ञान से तथा उन्हें मीटाने के लीए आत्मचिंतन और प्रभुचिंतन करना चाहिए। जो ज्ञानी और येागी है वे मृत्यु से डरते नही उसका अव्हान करते हैं। क्योंकि उन्हें मालुम है की हर मृत्यु नवजीवन का प्रारंभ हैं। इसलिए इस आखरी सच को समजकर श्रेष्ट कर्मों द्वारा नये युग और नवजीवन में चलने का पुरुषार्थ करें, यही सत्य ज्ञान और जीवन का मर्म हैं।